Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

प्रेम की पराकाष्ठा का गीत: भ्रमरगीत

Dr. Reeta Kumari*

Higher Secondary Teacher (+2) Bhola High School Deodhar, Ghoghadiha, Madhubani, Bihar

सार – *कृष्ण ने जब ब्रज छोड़ा तो वहां जीवन-पर्यन्त लौट नहीं सके। परन्तु पीछे रह गयी थीं उनसे प्रेम करने वाली वे गोपिकाएं जो हर क्षण अपने प्रेमी का रास्ता देखतीं कि कभी तो वह लौटेंगे। कृष्ण स्वयं तो वहां नहीं लौट सके लेकिन उद्धव को समाचार के साथ भेजा। कहते हैं कि उद्धव को जब अपने ज्ञान का अति मान हो गया था तो कृष्ण को उपाय सूझा कि मात्र गोपिकाएं ही हैं जो उसका मर्दन अपने प्रेम भाव से कर सकती हैं। निसंदेह ऐसा हुआ भी।*

ब्रज में उद्धव के योग संदेश और गोपिकाओं के प्रेम के बीच हुई जिरह और तर्कों को सूरदास ने भ्रमर गीत के माध्यम से लिखा है। यह रचना भक्तिकाल के काव्य में पठनीय है। इसके पद अति भावुक और अनुराग से भरे हैं।

----------X----------

प्रेम का स्वरूपः-

अन्तर्मन का वह भाव जो मन, वचन और कर्म से किसी के प्रति समर्पित हो जाने को प्रेरित करता है, प्रेम है। यह समर्पण भक्त का भगवान के प्रति, संतान का माता-पिता के प्रति, सखा का दूसरे सखा के प्रति, माता-पिता का अपनी संतान या अन्य बालकों के प्रति, प्रकृति के प्रति, जीव-जन्तुओं के प्रति

और सम्पूर्ण चराचर जगत के प्रति हो सकता है। 'प्रेम' अर्थात् 'रति'; और यह रति का भाव सभी देषों में सभी अवस्था के स्त्री-पुरूषों, बालकों एवं वृद्धों, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों, फूलों तक में समान रूप से विद्यमान है। यहाँ तक कि किसी साधना की परिणति भी प्रेम में ही होती है।

अन्तर्मन की यह पवित्र भावना किसी-न-किसी आलम्बन के सहारे पल्लवित और पुष्पित होती है, जिसकी सुवास शनैः शनैः वातावरण में स्वतः ही संचारित हो जाती है। आलम्बन-भेद के आधार पर प्रेम को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है-

(क) बड़ों के प्रति प्रेम

(ख) छोटों के प्रति प्रेम

(ग) समवय के प्रति प्रेम

ईश्वर और बड़ों के प्रति प्रेम में 'पूज्य भाव' का संयोग होता है। इसीलिए इसे 'श्रद्धा या भक्ति' कहते है। छोटों के प्रति प्रेम में 'ममत्व भाव' का संयोग होता है। इसे 'वात्सल्य' कहते है। समवयस्क के प्रति प्रेम में 'सहृदयता और मैत्री' का संयोग होता है, जिसका व्यापक रूप 'दाम्पत्य प्रेम' है। नायक-नायिका विषयक 'दाम्पत्य प्रेम' को 'श्रृंगार' कहते है। इस प्रकार आलम्बन भेद के आधार पर 'प्रेम' की मुख्यतः तीन धाराएँ है - भक्ति, श्रृंगार और वात्सल्य।

प्रेम की पराकाष्ठाः

प्रेम के दो पक्ष हैं-संयोग और वियोग। प्रेम में जब मिलन की बेला आती है, तो अत्यन्त रोमांचकारी एवं अविस्मरणीय अनुभूति होती है। परन्तु जब कभी वियोग का सामना करना पड़ता है, तो निःस्वार्थ एवं पवित्र प्रेम की पराकाष्ठा झलक पड़ती है, जिसकी स्थिति मिलन की अनुभूति से कई गुणा सूक्ष्म एवं सात्विक होती है। रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं-

"मिलन अंत है मधुर प्रेम का, और

विरह जीवन है,

विरह प्रेम की जागृति गति है, और

सुशुप्ति मिलन है।"

"सच्चा प्रेम वही है जिसकी

www.ignited.in

तृप्ति आत्म-बलि पर हो निर्भर।

त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,

करो प्रेम पर प्राण निछावर।।"

वस्तुतः प्रेम की परीक्षा वहीं होती है, जहाँ सर्वस्व न्योछावर कर देने में भी संकोच न हो। मिलन ठहरे हुए पानी की तरह है, तो विरह कल-कल करती बहती हुई नदी की धारा है। कभी याद जाती नहीं, तो आने का प्रष्न कहाँ उठता है! "जिस हृदय में प्रेम का अंश जितना अधिक होगा, उसमें उतनी ही अधिक शीतल जलन तथा मादक वेदना की सृष्टि होगी।" मिलन में हम अपने बाहर तथा वियोग में भीतर रहते है। इसीलिए कहा जाता है कि मिलन की छाया के भीतर जो विरह की झाँकी है, जीवन में वही प्रेम की सच्ची पराकाष्ठा है।

भ्रमरगीतः

भ्रमरगीत में प्रेम के सच्चे एवं सर्वोच्च स्वरूप कें दर्शन होते है। कृष्ण का बाल्यकाल गोकुल में व्यतीत हुआ था। यहीं साथ-साथ खेलते-खाते और गउएँ चराते हुए, उनका गोकुल के ग्वाल एवं वहाँ की ग्वालिनों से प्रेम हो गया था। यह बचपन का साहचर्य प्रेम था, जो किसी भाव में नही छूट सकता था। बचपन के जिन सहपाठियों से हमें अधिक लगाव होता है, उन्हें किसी वय या पद में देखते ही हम समस्त मर्यादाओं को भूलकर 'धौल-धप्पे' 'अबे तबे' करने लगते है। ठीक वही प्रेम अपनी समस्त शुचिता, सहजता, सरलता और सूक्ष्मता के साथ मर्यादित रूप में भ्रमरगीत में विद्यमान है।

वस्तुतः 'भ्रमरगीत' विप्रलम्भ श्रृंगार का काव्य है। कृष्ण गोपियों से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके, उनको अपने वियोग में तड़पता छोड़कर मथुरा चले जाते है। मथुरा में कंस का वध करके राज-काज में इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उनको गोकुल लौटने का अवसर नहीं मिलता। वे अपने ज्ञानी मित्र उद्धव को गोकुल में माता-पिता, ग्वालबाल और गोपियों को सांत्वना देने के लिए भेजते है। उद्धव-गोपी-संवाद के बीच में एक भ्रमर उड़ता हुआ आता है और एक गोपी के चरण को कमल समझ कर उस पर बैठ जाता है। गोपियाँ वो सारी खरी-खोटी बातें, जो सीधे-सीधे कृष्ण और उद्धव को नहीं सुना पाती, भ्रमर को लक्ष्य करके सब सुना डालती है। गोपियों के समक्ष उद्धव का सारा ज्ञान-गर्व चला जाता है और वे गोपियों की प्रेम - भावना में सराबोर होकर मथुरा लौट आते है।

"कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा चिन्तनीय हो जाती है। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएँ प्रिय एवं सुखदायक लगती थी, वे सब-की-सब अब दुःखदायी एवं अप्रिय लगने लगी है, वे उन्हें काट खाने को दौड़ती हुई दिखाई देती है। "जाग्रतावस्था की तो बात ही क्या है, हमेशा रोते ही बीतता है। स्वप्न में भी कृष्ण का विरह उनके कलेजे में कसकता रहता है। न जागते चैन है, न सोते हुए ही। वस्तुतः उन्हें नींद आती ही नहीं है। उनकी व्यथा को कौन जाने! वे रात को सोती है अथवा बैठी हुई रोती रहती है।
-

"हमको सपनेउ में सोच।

जा दिन ते बिछुरे नन्द-नन्दन ता दिन ते यह पोच।

मनु गोपाल आये मेरे गृह हाँसि करि भुजा गही।

कहा करौ बैरिन भई निंदिया निमिश न और रही।"

वास्तव में "विवशता में ही प्रेम की वह पवित्रता है जिसमें अवगाहन करते हुए सहृदय कभी तृप्त ही नही हो पाते हैं।"

विरह की दस दशाएँ:

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भ्रमरगीतसार' की प्रस्तावना में लिखा है- "जिस प्रकार बंग देश में कृष्णभक्त चैतन्य थे, उसी प्रकार उत्तर भारत में श्री वल्लभाचार्य जी ने परम भाव की उस आनंदविद्यायिनी कला का दर्शन कराकर, जिसे प्रेम कहते है, जीवन में सरसता का संचार किया। दिव्य प्रेम-संगीत की धारा में इस लोक का सुखद पक्ष निखर आया और जमती हुई उदासी या खिन्नता बह गई।"

"जयदेव की देववाणी में स्निग्ध पीयूष - धारा जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील-कुंजों के बीच फैलकर मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तिन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।..... मनुष्य के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया या कम-से-कम जीने की चाह बनी रहने दी।"

'भ्रमरगीतसार' के विरह वर्णन में केवल प्रेम की भावुकता ही नहीं है, बल्कि शास्त्रीय नियमों का भी सफल पालन दिखाई देता है। साहित्य-शास्त्रियों के मतानुसार विरह की दस दशाएँ मानी गई है-

(1) अभिलाषा

(2) चिन्ता

(3) स्मरण

(4) उद्वेग

(5) प्रलाप

(6) उन्माद

(7) व्याधि

(8) जड़ता

(9) मूच्छा

(10) मरण

भ्रमरगीत में विरह की ये दसों दशाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है-

अभिलाषाः

वियोग के क्षण में प्रियतम सामने तो नही होते है, परन्तु मन में यह अभिलाषा सदैव बनी रहती, कब प्रियतम के दर्शन हो जाए! यही अभिलाषा गोपियों के मन में भी सदैव बनी रहती है और उन्हें हर क्षण हर कण में श्रीकृष्ण नजर आते है-

"'निरखत अंक श्यामसुन्दर के बार-बार लावति छाती।

लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।

हरि की लाड़ गनति नहिं काहु निसिदिन सुदिन रासरसमाती।

प्राणनाथ, तुम कब धौं मिलौगे सूरदास प्रभु बाल संधाती।।"

उद्वव से कृष्ण की चिट्ठी प्राप्त करके गोपियाँ प्रेम-विह्वल हो उठती हैं। पत्र में उनके द्वारा लिखे हुए अक्षरों को देखकर गोपियाँ उस चिट्ठी को बार-बार अपनी छाती से लगाती है। नयनाश्रुओं से मिलकर कागज की स्याही ने श्याम की चिट्ठी को श्याम रंग बना दिया। गोपियाँ कहती हैं, हमारे वे दिन कितने सुखमय थे। कृष्ण के प्रेम को प्राप्त करके हम अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं थीं। अपने पुराने सुखमय दिनों को याद करके गोपियाँ अत्यन्त कातर भाव से कहती है कि प्राणनाथ हे हमारे बचपन के साथी! न जाने अब तुम हमको कब मिलोगे ?

चिन्ताः

"मधुकर! ये नैना! पै हारे।

निरखि निरखि मग कमलनयन को प्रेमसगन भए मारे।

ता दिन ते नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे।

सपन तुरी जागत पुनि सोई जो हैं हृदय हमारे।।"

गोपियाँ हर धड़ी कृष्ण का ध्यान करती हैं, उन्हें सिर्फ कृष्ण की चिन्ता लगी रहती है। वे कहती हैं कि हे मधुकर, यद्यपि हमारे ये नेत्र कमल नयन की निरन्तर बाट जोहते-जोहते थक गये हैं, फिर भी ये सदैव उन्हीं के आगमन की कल्पना करके अत्यधिक प्रेम में मग्न बने रहते है। जब से श्रीकृष्ण यहाँ से गये हैं, उस दिन से हमारी आँखों की नींद जागती रही हैं। उनकी प्रतीक्षा में रह - रहकर चैंक पड़ती हैं।

स्मरणः

गोपियाँ कहती हैं कृष्ण के साथ बिताए गए हर पल, हर बातों को उन्होंने अपने हृदय में सँजोकर रखा है। उन्हें सब स्मरण है, कुछ भी भूली नहीं है -

"मेरे मन इतनी सूल रही।

वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं, जे नन्दलाल कहीं।

एक दिवस मेरे गृह आए मैं दधि मथति रही।

देख तिन्हें हौं मौन कियौ, सो हरि गुसा गही।"

उद्वेगः

"तिहारी प्रीति किंधौ तरबारि।

दृष्टिधार करि मार साँवरे, घायल सब-ब्रज नारि"

प्रलापः

"कैसे पनघट जाऊँ सखी री, डोवा जमुना तीर।

भरि भरि जमुना उमड़ि चलति है, गन नैननि के नीर।

इन नैननि के नीर सखी री, सेज घरनाउँ।

www.ignited.in

चाहति हौं तेहि ऊपर चढ़ि कैं स्याम मिलन को जाउँ।।''

उन्मादः

''माधव यह ब्रज को त्यौहार।

मेरो कह्यौ पवन को भुस भयौ गावत नन्दकुमार।''

व्याधिः

''ऊधौ जू तिहारे चरन लागौ,

वारक या ब्रज करउ भाँवरी।

निसि न नींद आवैं, दिन न भोजन भावै,

मग जोवत भई दृष्टि झाँवरी।''

जड़ताः

''बालक संग लिए दधि चोरत, खात खवावत डोलत।

सूर सीस सुनि चैंकति नामहिं, अब काहे न मुख बोलत।''

मूच्छाः

''सोचति अति पछताति राधिका मूर्छित धरनि दढ़ी।

सूरदास प्रभु के बिछुरे तैं बिथा न जाति सही।''

मरणः

''जब हरि गवन कियौ पूरब लौं तब लिखि जोग पठायो।

यह तन जरिकैं भसम है निवरयो बहुरि मसान जगायो।

मेरे मोहन आन मिलाओ कै लै चलु हम साथै।

सूरदास अब मरन बन्यौ है पाप तिहारे माथै।''

उल्लेखनीय है कि 'भ्रमरगीत' में शास्त्रों में वर्णित विरह के इन दसों दशाओं की तो स्पष्ट झलक दिखलाई देती ही है, साथ ही अनेक पदों में विरह की ऐसी मानसिक स्थितियों का निरूपण किया गया है जो इन दसों दशाओं के बाहर होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक हैं। वास्तव में 'भ्रमरगीत' प्रेम की पराकाष्ठा का गीत है आत्मोत्सर्ग का गीत है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहाँ तक कहा है- ''न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेंगी जिनके नामकरण तक नहीं हुए है।''

उद्धव ब्रज में आकर गोपियों को ज्ञान- योग का संदेश देने लगे, किन्तु गोपियाँ उस उपदेश को ग्रहण करने के लिए तत्पर नहीं है। वे कृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुल हैं। उद्धव की रूखी बातें सुनकर वे भला कैसे रह सकती है-

''अँखिया हरि दर्शन की भूखी।

कैसे रहैं रूप रस रांची ये बतियां सुनि रूखी।।''

गोपियों को वेदना ने इतना अधीर, व्याकुल एवं आतुर बना दिया है कि उन्हें अपने तन-मन का होश नहीं है। विरह वेदना से व्याथित होकर वे मर जाना ही अच्छा समझती हैं-

''अब या तनहिं राखि का कीजै।

सुन री सखि श्यामसुन्दर बिन बांटि विषय विष पीजै।

सूर ने विरह के अत्यन्त सात्विक एवं अनन्य रूप का चित्रण अपने काव्य में किया है। उनकी गोपियाँ, 'मनसा, वाचा, कर्मणा' कृष्ण के प्रति समर्पित हैं।

''ऊधौ मन नाहीं दस बीस।

एक हुतो सो गयो श्याम संग को अराध तुव ईस।।''

वियोग वेदना सह न पाने के कारण राधा मूच्छित हो रही है। वह अत्यन्त मलिन वस्त्र धारण किए हुए है-

''अति मलीन वृषभानु कुमारी।

हरि स्रमजल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी।''

जब से कृष्ण मथुरा गए हैं, तब से गोपियों की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है-

''निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहत पावस ऋतु हम पै, जब तै श्याम सिधारै।।''

गोपियों को लगता है कि यह यमुना व्यर्थ में बह रही है। पक्षी व्यर्थ में कलरव करते है, कमल व्यर्थ में फूलते है और भ्रमर व्यर्थ में ही गुंजार करते है। प्रिय के बिना उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता-

''बृथा बहति जमुना खग बोलत बृथा कमल फूलनि अलि गुंजैं।

www.ignited.in

पवन पानि धनसार सजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुंजैं।।''

यहाँ तक कि यमुना भी विरह के ज्वर में जलकर ही काली दिखने दिखने लगी है-

''देखियत कालिन्दी अति कारी।

अहो पथिक कहियों उन हरि सौं भई विरह जुर जारी।।

सूरदास प्रभु जो जमुना गति सो गति भई हमारी।।''

गोपियाँ कहती हैं, हमारे मन-प्राण में केवल कृष्ण बसे हैं। अब किसी भाँति हम उन्हें अपने हृदय से निकाल नहीं सकती हैं-

''उर में माखनचोर गड़े।

अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो। तिरछे ह्वै जु अड़े।।''

क्योंकि कृष्ण गोपियों के हृदय में तिरछे होकर जो अटक गये हैं।

''सच्चे प्रेम में आत्मोत्सर्ग की भावना बढ़ती जाती है। अन्त में निराश होकर प्रेमी प्रिय-दर्शन का आग्रह भी छोड़ देता है। आत्मोत्सर्ग की यह पराकाष्ठा वहाँ समझनी चाहिए, जब प्रेमी का प्रेम एक अकिंचन कामना के रूप में दिखाई देने लगे। वह अपने लिए प्रिय से किसी सुख की कामना नहीं करता, वह केवल प्रिय के सुख की कामना को सर्वस्व समझ लेता है। प्रिय चाहे जहाँ रहे सुख से रहे, उसका बाल भी बाँका न हो।'' सूर की गोपियों का प्रेम इसी चरम अवस्था को प्राप्त होता है-

''जहँ-जहँ रहौ राज करौ तहँ- तहँ, लेहु कोटि सिर भार।

यह असीस सम देति सूर सुन 'न्हात खसै जति बार'।।''

इतना ही नहीं, वे यह भी नहीं चाहतीं कि श्रीकृष्ण यहाँ आकर उन आफतों को भोगें जिनको हम भुगत रही हैं। गोपियों को यह तो ध्यान रहता है कि विरहताप के कारण ही उनको गाय-बछड़े भेड़िये और बाघ से दिखाई पड़ रहे है। वे तो यही समझती है कि ब्रज में चारों ओर आफत - ही - आफत है। हे उद्धव! जब तक ब्रज निरापद न हो जाए, यहाँ से आफते न टल जाएँ, तब तक कृष्ण यहाँ से दूर ही रहें तो अच्छा है-

''ऊधो! इतनी जाय कहौ।

सब बल्लभी कहत हरि सों, ये दिन मधुपुरी रहौ।

आज कालि तुमहु देखत हौ तपत तरनि सम चंद।

सुन्दर श्याम परम कोमल तनु, क्यों सहिहै नंदनंद।

तुम तो परम साधु कोमल चित जानत हौ सब रीति।

सूर श्याम को क्यों बोलैं ब्रज बिन टारे यह ईति।''

इतने कष्ट सहते हुए भी, ये सब कुछ होते हुए भी विरही नहीं चाहता है कि उसके हृदय से प्रेम पृथक हो जाए या प्रिय का ध्यान टूट जाए। ''विरही चाहे दुनिया भर में यह ढिंढोरा पीटता फिरे कि 'प्रीति करि काहु सुख न लह्यौ' परन्तु फिर भी वह प्रीत की रस्सी को तोड़कर भागना नहीं चाहता है।'' गोपियाँ प्रेम-क्षेत्र के बाहर की प्रत्येक वस्तु को उपेक्षा की दृष्टि देखती हुई कहती है-

''मधुकर! कौन मनायो मानै ?

सिखवहु तिनहिं समाधि की बातें जे हैं लोग सयाने।

हम अपने ब्रज ऐसेइ बसिहै बिरह- बाय बौराने।।''

विरह की अग्नि में प्रेमी की निकाई निखरती है। प्रेमरूपी स्वर्ण की परीक्षा विरहरूपी अग्नि में ही होती है-

''विरह अग्नि जरि कुन्दन होई। निरमल तन पावै कोई - कोई।''

गोपियाँ उद्वव को उल्टा समझाने लगती हैं कि तुम इस विरह की सुखद कसक को क्या समझों? विरह से प्रेम की पुष्टि होती है। विरह के लेप द्वारा ही प्रेम पक्का होता है-

''ऊधो! विरहौ प्रेम करे।

ज्यों बिनु पुट पट गहै न रंगहि, पुट गहे रसहि परै।

जौं आवों घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै।''

विरहाग्नि उनके चित् को सर्वथा निर्मल बना देती है। वे व्यंजनापूर्वक कहती हैं-

''अब हमरे जिय बैठ्यो यह पद 'होनी होऊ सो सोऊ'।

मिटि गयो मान परेखो ऊधो, हिरदय हतो तो होउ।''

प्रभु पद- प्रीति की सरिता में उर की वासनाएँ बह गई, अब क्या है-

''हम तो दुहूँ भाँति फल पायो।

www.ignited.in

जो ब्रजनाथ मिलै तो नीको,

नातरू जग जस गायों।''

गोपियों का कृष्ण- प्रेम उनके लिए धर्म का निर्वाह है। भक्ति अथवा मुक्ति की कामना के लिए किया जानेवाला अनुष्ठान नहीं। वे कृष्ण को प्रेम केवल इस कारण करती है- क्योंकि कृष्ण उन्हें प्रिय हैं।

विरह की व्याकुलता जितनी गोपियों में दिखाई देती है, उतनी ही कृष्ण के हृदय में भी विद्यमान है। परन्तु दोनों अपने- अपने कर्तव्य परायणता के कारण मर्यादित और तटस्थ दिखाई देते है। एक ही पद में कृष्ण की सम्पूर्ण व्याकुलता झलक पड़ती है-

''ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंससुता की सुन्दरि कगरी अरू कुंजन की छाहीं।।

यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुक्तावल जाहीं ।

जबहि सुरति अवति वा सुख कीजिय उमगत, तनु नाहीं।।

अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नन्द निबाहीं।

सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि पछताहीं।''

कृष्ण कहते हैं, हे उद्धव! मुझसे ब्रज की याद भुलाई नहीं जाती है। तुम्हारी यह मथुरा यद्यपि सोने की नगरी है और जहाँ मणिक और मोतियों के रूप में अपार वैभव भरा पड़ा है, तथापि जब मुझे ब्रज के पुराने सुखों की याद आ जाती है; तब मेरा मन वहाँ जाने के लिए व्याकुल हो उठता है और मैं अपने शरीर की समस्त सुधि-बुधि भूल जाता हूँ। मैंने ब्रज में लीलाएँ करके बड़े ऊधम मचाए थे, परन्तु बाबा नन्द और माता यषोदा ने सब शैतानियों को सहन किया और कभी मुझसे आधी बात भी नहीं कही। कहते- कहते कृष्ण का गला भर आया और उनसे आगे कुछ नहीं कहा गया। कृष्ण इन्हीं बातों को कहकर प्रायः पछताया करते थे कि गोकुल का वह निष्छल एवं प्राकृतिक जीवन त्याग कर वह राजनीति के प्रपंचों में आकर क्यों फँस गए?

गोपियाँ अपने प्रेम की पवित्र, निष्छल निःस्वार्थ कल- कल करती नदी में कृष्ण को तो साथ- साथ बहा ही ले जाती हैं, उद्धव भी तट पर तटस्थ नहीं रह पाते हैं। पवित्र प्रेम की लहर आकर उन्हें भी सिर्फ भिंगोती ही नहीं है सराबोर कर डालती हैं-

''सुन गोपिन को प्रेम नेम ऊधो को भूल्यों।

गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनि में भूल्यों।

छन गोपिन के पग धरैं, धन्य तिहारो प्रेम।''

और अंत में सकल अविनासी ब्रह्म के ज्ञाता उद्धव को सिर्फ यही कहते बनता है कि -

''गोकुल को सुख छाँड़ि कै कहाँ बसे हो आय।''

वस्तुतः प्रेम भाव की पराकाष्ठा आश्रय और आलम्बन की एकता है। प्रेम रस के क्षेत्र में सूर की पैठ अनोखी है। प्रेम की कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रह सकी- ''प्रेम क्षेत्र को उन्होंने चारों ओर से लोट - पोट कर देखा भी है और दिखाया भी है। इस क्षेत्र में अन्य कवियों की उक्तियाँ यदि जूठन-सी प्रतीत हों, तो इसमें आष्चर्य ही क्यों है। 'भ्रमरगीत' के रूप में सूर ने मर्मस्पर्षी विरह-वर्णन की एक माला-सी पिरोकर तैयार कर दी है। प्रत्येक पुष्प समान रूप से मोहक हैं, किसको छोड़ें और किसको ग्रहण करें!

जहाँ प्रेम है, वहाँ गीत है। विरह में मन के भाव जब उमड़ने-धुमड़ने लगते है, तो उन्हें व्यक्त होने के लिए सामान्य शब्दों का सहारा कम पड़ जाता है। ये पवित्र भाव लयबद्व होकर, संगीत की सरिता बनकर वाणी से निःसृत होती है। गीत-काव्य की सफलता के लिए संगीत, भावनाओं की गहनता आत्माभिव्यक्ति तथा संक्षित्पता आवश्यक है। 'भ्रमरगीत' की संगीतात्मकता इस कसौटी पर पूर्णतया खरी उतरती है। ''उसका प्रत्येक पद चुनकर सजाये गये गुलदस्ते के समान आनन्द- विधायक है। सूर के पद संगीतज्ञों के कंठहार हैं। आज भी सूर के पद के गायन के बिना कोई भी संगीत सम्मेलन पूर्ण नहीं समझा जाता है।''

सहायक ग्रंथ- सूची

(1) भ्रमरगीतसार, सं- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, उप सं- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(2) भ्रमरगीत - सार, संपादक – डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

(3) भारतीय काव्यशास्त्रः नयी व्याख्या – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

(4) भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका – डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

www.ignited.in

(5) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(6) हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं- डॉ. नगेन्द्र

(7) प्रेम (खण्डकाव्य) - मन्न द्विवेदी गजपुरी

Corresponding Author

Dr. Reeta Kumari*

Higher Secondary Teacher (+2) Bhola High School Deodhar, Ghoghadiha, Madhubani, Bihar

shodhsamagam1@gmail.com